International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(2): 116-121

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(2): 116-121
© 2015 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 11-11-2014
Accepted: 16-12-2014

डॉ० मोहन लाल
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, नेरवा,
शिमला हिमाचल प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ० मोहन लाल
सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, नेरवा,
शिमला हिमाचल प्रदेश, भारत

महापुराणानुसार श्री गणेश–चतुर्थी–व्रत माहात्म्य

डॉ० मोहन लाल

सारांश
प्रस्तुत शोध पत्र में विभिन्नपुराणानुसारी विघ्नेश्वर की विघ्नोत्पत्ति विवेच्य विषय है। इस प्रकार के वर्णनों की प्राप्ति शिव, नारद, अग्नि, भविष्य, वाराह तथा गरुडपुराणों में हुई है। शिव के अनुसार मनुष्य को नित्य श्रद्धा–भावसहित निजसामर्थ्यानुसार संपूर्ण–कार्य–सिद्धि–हेतु सिन्दूर, चन्दन, तण्डुल, केतक और अनेकविध उपचारों से गणेश्वर की पूजा करनी चाहिए। शिव का कथन था कि जो भक्तिपूर्वक नानोपचारों से गणेशार्चना करते हैं, उन के सभी कार्यों की सिद्धि होती है तथा सर्वदा ही विघ्ननाश होता है। नारदपुराणानुसार गणेश की अर्चना कर नर देवादि के लिए भी दुष्प्राप्य फल की प्राप्ति करता है। अग्निपुराण में भुक्तिमुक्तिप्रदायक चतुर्थीव्रतों का वर्णन उपलब्ध होता है। भविष्य पुराण में वर्णन प्राप्त होता है कि नर एवं नारी भक्ति तथा श्रद्धासहित चतुर्थी की रात्रि से अनन्यमनसा उपवास कर के भक्तिसहित रक्तपुष्प तथा विलेपनों से कुज की पूजा करता है और श्रद्धान्वित होकर भक्तिपूर्वक सर्वप्रथम गणेश की अर्चना करता है, उस से सन्तुष्ट वह (गणेश) सौभाग्य और रूपसम्पदा प्रदान करते हैं। वाराह पुराणानुसार चतुर्थी तिथि अन्य तिथियों की अपेक्षा सर्वाधिक महत्त्वमयी वर्णित है। गरुड़ में कहा गया कि माघ के शुक्लपक्षीय चतुर्थी के दिन निराहार रह कर कृत व्रत विशेष महत्त्वपूर्ण होता है। इसमें विप्र को तिल देकर स्वयमपि तिलोदक का भक्षण करना चाहिए।

कूटशब्द : विघ्नहर्तृत्व, एकाग्रचित्त, प्रदक्षिणा।

प्रस्तावना
शिवपुराण
शिवपुराण में ब्रह्मा ने नारद को बताया कि सर्वप्रथम महेश्वर, तत्पश्चात् विष्णु, तदनन्तर स्वयं ब्रह्मा, उमा एवं समस्त देवों ने अत्यधिक हर्षपूर्वक गणपतिपूजन किया। वहीं पर सबने उमा की प्रसन्नता–हेतु गणेश को गणाधीश बनाकर विविध वर तथा आशीर्वाद प्रदान किए। तत्पश्चात् पुनः प्रसन्नचित्त शिव ने श्री गणेश को नाना वर प्रदान करते हुए कहा कि वह निःसन्दिग्धरूपेण अतीव संतुष्ट थे जिसके फलस्वरूप जगत् ही संतुष्ट था और कोई भी उनके विरुद्ध नहीं होगा। उन्होंने कहा कि गणेश का बालरूप ही महापराक्रमकारक था। शक्तिपुत्र सुतेजस्वी थे, अतः सदा सुखी रहेंगे। विघ्नहर्तृत्व के कारण उनका नाम श्रेष्ठ होगा। वह उनके सकल गणों के अधिपति और सम्पूज्य होंगे। तत्पश्चात् प्रसन्न देवों और अप्सराओं ने गायन–वादन तथा नर्तन किया। सुप्रसन्न महात्मा शिव ने गणनाथ को पुनः वर प्रदान करते हुए कहा कि वह भाद्रपद मास की कृष्णपक्षीय चतुर्थी के दिन असित पक्ष में शुभ चन्द्रोदय के अवसर पर प्रथम प्रहार में उमादेवी से उनके रूप का आर्विभाव हुआ था, अतः वह दिन व्रत के लिए सर्वोत्तम था।[1]

तत्पश्चात् व्रत के विधान का वर्णन करते हुए शिव ने कहा कि उस दिन से लेकर उस तिथि (चतुर्थी) पर प्रसन्नतापूर्वक सर्वसिद्धि–हेतु विशेषरूपेण शोभन व्रत करना चाहिए। तदनन्तर प्रतिमास व्रत करते हुए वर्षान्त में आने वाली चतुर्थी तक उन की आज्ञानुसार व्रत का सम्पादन किया जाना चाहिए। संसार में जो अतुल और अनेकविध सुखों की इच्छा करते हैं, उन्हें भक्ति तथा विधिपूर्वक चतुर्थी पर उनकी पूजा करनी चाहिए। मार्गशीर्ष मास में रमा चतुर्थिका के दिन प्रातः काल स्नानान्तर व्रत करके विप्रों को निवेदित कर दूर्वादि से गणेश का पूजन तथा उपवास करना चाहिए। तत्पश्चात् रात्रि के प्रथम प्रहर में स्नान कर नर को सम्यक् पूजन करना चाहिए। प्रवाल (मूँगे) धातु अथवा श्वेतार्क अथवा मार्दवनिर्मित प्रतिमा की प्रतिष्ठा करके विधिपूर्वक नानाविध गंध, दिव्य चन्दन और पुष्पों से पूजन करना चाहिए। एक वितस्ति लम्बी, त्रिशाखायुक्त और मूलरहित एक सौ एक दूर्वाओं, इक्कीस धूप, दीप और विविध नैवेद्यों से प्रतिष्ठित प्रतिमा की आराधना की जानी चाहिए। ताम्बूलादि अर्धसद्द्रव्यों से प्रणाम करके स्तवनप्रभृति से गणनायक का पूजन करके बालचंद्र की अर्चना करनी चाहिए।

तदनन्तर विप्रों का समाराधन सम्पादित कर उनको प्रसन्नतापूर्वक अनेक मधुर पदार्थों से तृप्तिपर्यन्त भोजन करवाना चाहिए, तत्पश्चात् स्वयं लवणविहीन मधुरान्न ग्रहण करके विसर्जन करना चाहिए। अंत में नियमपूर्वक गणेशस्मरणानन्तर वह व्रत शुभ होता है।[2]

प्रस्तुत पुराण में ब्रह्मा ने नारद को बताया कि शिव ने आगे कहा कि एवंविधिना व्रत के संपूर्ण तथा वर्ष–समाप्ति होने पर व्रतसम्पूर्तिहेतु उद्यापनविधि करनी चाहिए। स्थण्डिल (चौकी) पर अष्टदल बनाकर एक कलश स्थापित करके गणेश की मूर्ति के वेद–विधिपूर्वक पूजनानन्तर हवन करना चाहिए। (सौभाग्यवती) स्त्रीद्वय, बटुकद्वय तथा द्वादश ब्राह्मणों को शिवाज्ञा से तद्कार्यपूर्त्यर्थ मूर्ति के समक्ष संस्थित कर आदर एवं विधिपूर्वक पूजन करके भोजन करवाया जाना चाहिए। तदुपरान्त निशा में जागरण करके प्रातः काल पुनः पूजन करके पुनरागमनार्थ विसर्जित किया जाना चाहिए। बालकों से आशीर्वाद प्राप्त कर व्रतसम्पूर्णताहेतु स्वस्तिवाचन करके पुष्पा०जलि प्रदान करनी चाहिए। तत्पश्चात् नमस्कार करके अनेक कार्य किए जाने चाहिए। एवंविध व्रत के सम्पादन से मनुष्य अभीष्ट फल–प्राप्ति करता है। शिव के अनुसार मनुष्य को नित्य श्रद्धा–भावसहित निजसामर्थ्यानुसार संपूर्ण–कार्य–सिद्धि–हेतु सिन्दूर, चन्दन, तण्डुल, केतक और अनेकविध उपचारों से गणेश्वर की पूजा करनी चाहिए। शिव का कथन था कि जो भक्तिपूर्वक नानोपचारों से गणेशार्चना करते हैं, उन के सभी कार्यों की सिद्धि होती है तथा सर्वदा ही विघ्ननाश होता है। एवंविध गणेश की पूजा समस्त वर्गों, स्त्रियों और विशेषतया उदयाभिमुखी नृपों द्वारा की जानी चाहिए। जो जिस–जिस वस्तु की कामना करता है, निश्चय ही वह उस–उस की प्राप्ति करता है, अतः कामयमान (नर) द्वारा सर्वदा ही उनकी सेवा (पूजा) की जानी चाहिए। शिव द्वारा महात्मा गणेश–पूजन के विषय में एवंविध कहा गया। देवों समस्तमुनिश्रेष्ठों और शंभुप्रिय सभी गणों ने 'ऐसा ही हो' यह कह कर परमविधिना गणाधीशार्चना की। तत्पश्चात् सभी गणों ने गणेश्वर को नमस्कार किया और सत्कारपूर्वक अनेकविध वस्तुओं से उनकी पूजा की। ब्रह्मा का कथन था कि गिरिजा को जो हर्षानुभव हुआ उसका चारों मुखों से वर्णन करने में भी वह असमर्थ थे। तत्काल ही देवदुन्दुभिनाद होने लगा। अप्सराओं ने नर्तन किया तथा गन्धर्व गायन करने लगे। पुष्पवृष्टि होने लगी। गणाधीश के प्रतिष्ठित होने पर जगत् स्वास्थ्य को प्राप्त हुआ। महान् महोत्सव का वातावरण था और समस्त दुःखक्षय को प्राप्त हो गए। एवंविध अवलोकन कर पार्वती और महादेव विशेषरूपेण अतीव प्रसन्न हुए। सर्वत्र सुखदायक सुमंगल था। तदनन्तर देव और समस्त ऋषिगण स्तुति करके शिवाज्ञा प्राप्त करके निजालय की ओर प्रस्थित हुए।[3]

नारदपुराण

नारदपुराण में सनातन ने विप्र नारद से कहा कि वह उन चतुर्थी व्रतों का वर्णन करने जा रहे थे जिनके सम्पादन से नर–नारी अभीष्ट कामनाओं की प्राप्ति किया करते हैं। उनके अनुसार चैत्र मास की चतुर्थी में वासुदेवस्वरूपी गणप की सम्यग्रूपेण अभ्यर्चना करके ब्राह्मण को सुवर्णदक्षिणा देकर देव को नमस्कार करने वाला मनुष्य विष्णुलोक को प्राप्त करता है। वैशाख– चतुर्थी पर संकर्षणसंज्ञक गणेश की प्रार्थना कर विधिवेत्ता नर गृहस्थ और द्विजमुख्यों को शंख प्रदान कर संकर्षण लोक को प्राप्त कर अनेक कल्पों तक प्रसन्न रहता है। ज्येष्ठमास की चतुर्थी पर प्रद्युम्नरूपी गणनायक के पूजनानन्तर नरसमूहों को फल और मूल प्रदान करके मनुष्य स्वर्ग–प्राप्ति करता है। आषाढ़ मास की चतुर्थी पर अनिरुद्धकनामक गणेश्वर की सम्यग्रूपेण अर्चना कर यतियों को अलाबु पात्र देने से नर को अभीष्ट लाभ होता है। एवंविध चतुर्मूति व्रतों का सम्पादन द्वादश–वर्षपर्यन्त करके फलेच्छुक को विधि–विधान से उद्यापन करना चाहिए। सनातन ने आगे कहा कि ज्येष्ठ मास की चतुर्थी में अन्य श्रेष्ठ सतीव्रत भी है जिसके सम्पादन से मनुष्य गणेश की माता के लोक में उनके समान मुदित होता है। उसी प्रकार आषाढ़ मास की चतुर्थी में भी अन्य शुभकारी व्रत होता है क्योंकि वह रथंतरसंज्ञककल्प का आदिभूत दिवस है। इसमें श्रद्धापरिपूरित मनसा विधिविधानपूर्वक गणेश की अर्चना कर नर देवादि के लिए भी दुष्प्राप्य फल की प्राप्ति करता है। श्रावण मास की चतुर्थी में विधिवेत्ताओं में श्रेष्ठ नर द्वारा चन्द्रोदय होने पर गणेश की अर्घ्य प्रदान करना चाहिए। लम्बोदर, चतुर्बाहु, त्रिनेत्र, रक्तवर्णक, नानारत्नविभूषणयुक्त और प्रसन्नमुख गणेश्वर का चिन्तन कर आवाहनादि सभी उपचारों से उनकी भली–भांति अर्चना की जानी चाहिए। गणेश को प्रीतिदायक नैवेद्य मोदक दिया जाना चाहिए। एवंविध व्रत करके स्वयं भी मोदकभक्षणानन्तर अर्चना करके मानव को रात्रि में भूमि पर सुखपूर्वक शयन करना चाहिए। इस व्रत के प्रभाव से नर मन में चिंतित कामनाओं को पा कर लोक में परम गणेश पद को भी प्राप्त करता है। त्रिलोकी में एतत्तुल्य अन्य कोई भी व्रत नहीं है, अतः सभी कामनाओं की प्राप्ति के इच्छुक मानव द्वारा इसे प्रयत्नपूर्वक किया जाना चाहिए।[4]

सनातन ने नारद को बताया कि उसी दिन अर्थात् श्रवण मास की चतुर्थी पर ही दूर्वा– गणपतिव्रत होता है, अतः वह उन्हें उसके विधि–विधान से अवगत करवाने जा रहे थे। उनके अनुसार सुवर्णनिर्मित गणप को ताम्रपात्र पर स्थापित करने के पश्चात् उसे रक्त वस्त्र से आवेष्टित कर सर्वतोभद्रमण्डल में रख कर उसकी रक्तपुष्पों और प०च पत्रिकाओं से पूजा करनी चाहिए। बिल्व पत्र, अपामार्ग, शमी, हरिप्रिया दूर्वा तथा अन्य प्रसूनों से उस हैमगणपति का पूजन कर फल और मोदकों की भेंट चढ़ाकर चन्द्रोदय पर अर्घ्य प्रदान किया जाना चाहिए। तत्पश्चात् सोपस्कर विघ्नेश की मूर्ति की सम्यक् प्रार्थना कर विधिज्ञ आचार्य का आदरसहित निवेदन किया जाना चाहिए। एवंविध प०चवर्षपर्यन्त यथाविधिना उपासना करके नर इस लोक में सम्पूर्ण भोगों का भोग कर गणपतिलोक की प्राप्ति करता है। तत्पश्चात् भाद्रपदमास की चतुर्थी पर बहुला–धेनुसंज्ञक व्रत होता है जिसमें माला, गंध और वस्त्रप्रभृति से यत्नपूर्वक पूजन करने के उपरान्त परिक्रमा कर समर्थ व्यक्ति को दान देना चाहिए। असमर्थ नर द्वारा नमस्कारपूर्वक प्रतिमा विसर्जित की जानी चाहिए। एवंविध इस व्रत को पाँच, दस अथवा षोडश वर्ष–पर्यन्त करने के पश्चात् उसका उद्यापन कर पयस्विनी (दुग्ध देने वाली) गाय का दान किया जाना चाहिए। इस व्रत के प्रभाव से मनोरम भोगों को भोग कर देवगणों से सत्कृत नर गोलोक को प्राप्त होता है।[5]

शुक्लचतुर्थी पर होने वाला व्रत सिद्धवैनायकनाम्ना ख्यात है। आवाहनादि करके सकल उपचारों से समर्चन करने के पश्चात् एकाग्रचित्त होकर सिद्धिविनायक, एकदन्त, शूर्पकर्ण, गजवक्त्र, चतुर्भुज, पाशांकुशधर और तप्तका०चनसन्निभ का ध्यान करना चाहिए। जिन इक्कीस पत्तों को जिन इक्कीस नामों वाले गणपति को भक्तिसहित समर्पित किया जाना चाहिए, उन्हें सनातन ने वर्णित किया है, यथा–सुमुख को शमीपत्र, गणाधीश को भृंगज, उमापुत्र को बिल्व, गजमुख को दूर्वा, लम्बोदर को बदरी, हरसूनु को धत्तूर, शूर्पकर्ण को तुलसी, वक्रतुण्ड को शिंबिज, गुहाग्रज को अपामार्ग, एकदन्त को बार्हत, हेरम्ब को सिन्दूर और चतुर्होता को पत्रज तथा सर्वेश्वर को अगस्त्य का प्रीतिविवर्द्धन पत्र। तत्पश्चात्–गंध, पुष्प और अक्षतों सहित दूर्वायुग्म लेकर पूजा करके भक्तियुक्त मानव को मोदकपंचक का नैवेद्य चढ़ाने के पश्चात् आचमन, नमस्कार और प्रार्थना करके विनायक की सोपस्करा हैमी मूर्ति का विसर्जन तथा गुरु को निवेदित करना चाहिए। ब्राह्मणों को दक्षिणा भी प्रदान की जानी चाहिए। एवंविध गणेश की भक्तिपूर्वक प०चवर्षपर्यन्त अर्चना करने वाला उपासक इस तथा परलोक से संबन्धित शुभ कामनाएँ प्राप्त करता है। इसी चतुर्थी पर चन्द्रदर्शन कदापि नहीं करना चाहिए। यदि कोई दर्शन कर लेता है तो वह निःसंदिग्धरूपेण मिथ्याभिशाप को प्राप्त करता है। तत्पश्चात् दोषनिवरणार्थ इस पौराणिक मन्त्र का पाठ करना चाहिए[6] –

सिंहः प्रसेनमवधीत्सिंहो जांबवता हतः।

सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमंतकः।।[7]

सनातन के अनुसार इषशुक्लचतुर्थी पर कपद्दीषसंज्ञक विनायक का मनुष्य को यत्नसहित पौरुष सूक्त और उपचारकों द्वारा पूजन किया जाना चाहिए। अकारण मुट्ठी भर तण्डुलों को कपदि्दकों सहित गंधपुष्प द्वारा अर्चित विप्र वटु को प्रदान किया जाना चाहिए। वैश्वदैवती (तण्डुलों) से हरदैवती के अमिश्रित तण्डुल कपर्दिगणनाथ को समर्पित करके उन्हें प्रसन्न करना चाहिए। कार्तिक मास की कृष्णपक्षीय चतुर्थी पर करकाख्यव्रत होता है जिस पर स्त्रियों का ही अधिकार है। सनातन द्वारा उसके विधान का भी वर्णन किया गया है। स्नाता तथा समलंकृता स्त्री को गणाधीश का पूजन करना चाहिए। उनके समक्ष पूर्णरूपेण पक्वान्न को दश करकों में विन्यस्त करने के पश्चात् एकाग्रमन से भक्तिपूर्वक देवदेव गणेश को समर्पित करके–देवो मे प्रीयताम्–इस प्रकार उच्चारणानन्तर सुवासिनी नारियों और विप्रों को इच्छानुसार आदरसहित समर्पित किया जाना चाहिए। तत्पश्चात् निशाकाल में चन्द्रोदय होने पर विधि–विधान सहित अर्घ्य प्रदान कर व्रत की परिपूर्ति–हेतु मिष्ठान्न का भोजन करना चाहिए। दुग्ध अथवा जल से परिपूर्ण, सुपारी, अक्षत और रत्न सहित करके ब्राह्मण को देना चाहिए। नारी द्वारा षोडश अथवा द्वादशवर्षपर्यन्त करने के पश्चात् उद्यापन करके यह व्रत छोड़ दिया जाना चाहिए। सौभाग्येच्छावशात् नारी को आजीवन भी यह व्रत करना चाहिए। स्त्रियों के लिए इस व्रत के सदृश सौभाग्यप्रद अन्य कोई भी व्रत नहीं है।[8]

मार्गशीर्ष की शुक्लपक्षीय चतुर्थी में व्रती के द्वारा प्रथम वर्ष में एक समय, द्वितीय को नक्त (रात्रि) में, तृतीय को बिना मांगा हुआ भोजन और चतुर्थक को उपवास करके व्यतीत करना चाहिए। इसी क्रमेण मनुष्य विधिपूर्वक चार वर्षों को समाप्त करके इसके अंत में व्रतार्थ स्नात महाव्रती द्वारा भूगण पर स्वर्ण से मूषकरथ बनाना चाहिए। सामर्थ्यहीन नर को वर्णकों से सुपत्रक शुभ्राब्ज बनाकर उसके ऊपर ताम्रपात्रसहित कलश संस्थापित करके उसे शुभ्र तण्डुलों से पूरित करना चाहिए। उसके ऊपर वस्त्रद्वय से आच्छादित गणेश्वर को न्यस्त करके गंधादि से पूजन करना चाहिए। गणेश को मोदक–नैवेद्य प्रदान कर प्रसन्न करना चाहिए। जागरण, गीत, वाद्यादि और पुराणाख्यान किये जाने चाहिए। प्रातः काल निर्मल जल में स्नान कर विधि–विधान सहित तिल, व्रीहि, जौ, श्वेत सर्षप, घृत और खण्डकसहित हवन सम्पादित करना चाहिए। गण, गणाधिप, कूष्मांड, त्रिपुरान्तक, लम्बोदर, एकदन्त, रुक्मदंष्ट्र, विघ्नप, ब्रह्मा, यम, वरुण, सोम, सूर्य, हुताशन, गन्धमादी, परमेष्ठी– इन षोडशाभिधानों के प्रत्येक के आदि में प्रणव और अंत में ङे (चतुर्थी विभक्ति) लगाने के पष्चात् अंत में नमः शब्द प्रयुक्त कर प्रत्येक नाम से दहन (अग्नि) में हवन करना चाहिए। वक्रतुण्ड शब्द से ङे (चतुर्थी विभक्ति) का प्रयोग करके अंत में हुम् का प्रयोग करके एक सौ आठ आहुतियाँ दी जानी चाहिए। तदनन्तर व्याहृतियों द्वारा सामर्थ्यानुसार हवन कर पूर्णाहुति डालनी चाहिए। दिक्पालों के पूजनानन्तर चतुर्विंशतिसंख्यक ब्राह्मणों को पायस और मोदकों से भोजन करवाया जाना चाहिए। दक्षिणासहित सवत्सा धेनु आचार्य को देनी चाहिए। तत्पश्चात् अन्य मनुष्यों को यथाशक्ति भूयसी दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए। द्विजोत्तमों के प्रणामानन्तर प्रदक्षिणा करके उन्हें विसर्जित करने के पश्चात् स्वयं भी सन्तुष्ट मन से बन्धुओं सहित भोजन किया जाना चाहिए। एवंविध व्रत करके नर इस लोक में श्रेष्ठ भोगों को भोग कर गणेश की कृपावशात् विष्णु के सायुज्य को प्राप्त करता है। सनातन के अनुसार कतिपय विद्वानों के अनुसार इसी की संज्ञा वरव्रत है। इस का विधि–विधान और फल भी पूर्ववर्णित व्रतसम होता है। पौष मास की चतुर्थी में विघ्नेश की भक्तिपूर्वक प्रार्थना कर एक ब्राह्मण को मोदकों से भोजन करवाकर दक्षिणा दी जानी चाहिए। ऐसा करने पर व्रती सम्पत्तियों का भाजन बनता है।[9]

माघ मास की कृष्णपक्षीय चतुर्थी पर संकष्टव्रत कथित है। व्रती को नियमपूर्वक उपवास का संकल्प कर चन्द्रोदय तक एकाग्रचित होकर संस्थित रहना चाहिए। तदनन्तर चन्द्रोदय होने पर मृत्तिकानिर्मित आयुध और वाहनसहित गणनायक को आसन पर न्यस्त करना चाहिए। तदनन्तर विधिपूर्वक षोडशोपचारों से अर्चना करने के पश्चात् नैवेद्य में मोदक और गुडसहित तिलकुट्टक एवं ताम्रज पात्र में रक्तचन्दन, कुशा, दूर्वा, कुसुम, अक्षत, शमीपत्र और दधि समान्वित अर्घ्य चन्द्र को प्रदान किया जाना चाहिए। गगनरूपी सागर के माणिक्य, दाक्षायणीपति और गणेश के प्रतिरूपक चन्द्र से व्रती को अर्घ्य ग्रहण करने हेतु प्रार्थना करनी चाहिए। इस विधि से गणेश को अलौकिक पापनाशक अर्घ्य दे करके यथाशक्ति ब्राह्मणों को पहले भोजन करवाकर उनकी आज्ञा से स्वयं भी भोजन करना चाहिए। एवंविधिना शुभंकर संकष्टनामक व्रताचरण से मनुष्य धन–धान्य सम्पन्न होता है और वह कदापि संकष्टप्राप्ति नहीं करता है।[10]

माघमास की शुक्लपक्षीय चतुर्थी पर उत्तम गौरीव्रत होता है। उस (चतुर्थी) पर योगिनियों तथा गणों से संयुत गौरी की सम्यग्रूपेण अर्चना करनी चाहिए। मनुष्य विशेषतः स्त्रियों द्वारा कुंकुमसहित कंदपुष्पों, रक्तसूत्रों, रक्तपुष्पों और अलक्तक, धूपों, दीपों, बलियों, आदरसहित गुड़, दुग्ध, खीर लवण और पालकों से पूजा करके सधवा नारियों और सुशोभन ब्राह्मणों को सौभाग्यवृद्धि–हेतु दान देना चाहिए और उनको भोजन कराने के पश्चात् बन्धुओं सहित भोजन करना चाहिए। यह गौरीव्रत सौभाग्य और आरोग्यवर्धक होता है। नर एवं नारियों द्वारा इसे प्रतिवर्ष किए जाने का विधान है। अन्य विद्वानों द्वारा ढुंढिव्रत और कतिपयों द्वारा कुंडव्रत भी वर्णित है। कइयों के अनुसार ललिताव्रत, तो कुछ के विचार में शांतिव्रत भी होता है। इस (चतुर्थी) पर कृत स्नान, दान, जप और होमादि दंती के प्रसादवशात् सहस्रगुणा फलदायक हो जाते हैं। फाल्गुन मास की चतुर्थी पर आगत ढुंढिराजव्रत शुभ होता है। तिलपिष्टों से विप्रों को भोजन करवाकर स्वयं भी मानव को भोजन करना चाहिए। गणेशाराधनपरायण नर दान, होम और तिलों से पूजन द्वारा गणपति कृपा के फलस्वरूप सिद्धि को प्राप्त करता है। सुवर्ण गजवक्त्र बनाने के पश्चात् प्रयत्नसहित सम्यग्रूपेण अर्चना कर श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सकल सम्पत्तियों की समृद्धि–हेतु प्रदान करना चाहिए।[11] जिस किसी भी मास में आगत रविवासरीय चतुर्थी अथवा सांगारका चतुर्थी विशेष फलदायक होती है। भक्तिपरायण मनुष्यों द्वारा शुक्ल एवं कृष्णपक्षीय सभी चतुर्थियों पर विघ्नेश देवेश का सम्यक् पूजन किया जाना चाहिए।[12]

अग्निपुराण

अग्निपुराण में भुक्तिमुक्तिप्रदायक चतुर्थीव्रतों का वर्णन उपलब्ध होता है। प्रस्तुत पुराणानुसार माघ मास की शुक्ल–पक्षीय चतुर्थी को उपवासकर्त्ता द्वारा गण की पूजा की जानी चाहिए। प०चमी में वर्षभर निर्विघ्नतापूर्वक तिलान्न–भक्षणकारी सुखी होता है। गं स्वाहा–इत्यादि मूलमन्त्र है। गामादि को हृदयादि में स्थापित कर[13] इस गणपतिविषयक मन्त्र का विधान प्राप्त होता है–

आगच्छोल्काय चावाह्य गच्छोल्काय विसर्जनम्।
उल्कान्तैर्गादिगन्धाद्यैः पूजयेन्मोदकादिभिः।।
ओं महोल्काय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।[14]

भाद्रपद मास की चतुर्थी में व्रत करने वाला कल्याण को पाता है। चतुर्थी के अंगारक में गण की अभ्यर्चना करके वह सकल वस्तुओं की प्राप्ति करता है। तत्पश्चात् अग्निदेव ने कहा कि फाल्गुन मास की चतुर्थी अविघ्नसंज्ञकी कथित है। चैत्र मास की चतुर्थी में दमनों द्वारा गण की आराधना कर भक्त सुखी होता है।[15]

भविष्यपुराण

भविष्यपुराण में सुमन्तु ने राजा युधिष्ठिर को बताया कि शिवा, शान्ता और सुखाभेदेन चतुर्थी त्रिविध होती है। उनके अनुसार भाद्रपद मास की शिवासंज्ञकी शुक्ला–चतुर्थी लोकों में पूजित है।

उसमें क्रियमाण स्नान, दान, उपवास और जप दन्ती की कृपावशात् शतगुना हो जाते हैं। गुड़, लवण और घृतदान शुभकरकथित है। गुडापूपों से पुण्य ब्राह्मण भोजन होना चाहिए। उन्होंने कहा कि जो स्त्रियाँ उस तिथि में गुड़, लवण और अपूपों से सास एवं ससुर की सदैव पूजा करती है, वे सभी विघ्नेश की कृपा से सौभाग्यशालिनी बन जाती है। कन्यका को इस विधि से विशेषरूपेण पूजन करना चाहिए। माघ मास की शुक्लपक्षीय शांतासंज्ञकी चतुर्थी शांतिप्रदायिनी एवं सदैव शांतिकर होती है। उसमें कृत स्नान एवं दानादि कर्म दन्ती गणेश के प्रसाद से सहस्रगुणा हो जाता है। जो मनुष्य उसमें उपवास करके विघ्ननायक का पूजन करता है, उसका हवनादि कर्म का फल सहस्रगुणा हो जाता है। लवण, गुड़, शाक और गुडापूपों को भक्तिपूर्वक ब्राह्मण को प्रदान किये जाने से सहस्रगुणा फल की प्राप्ति होती है। विशेषरूपेण यदि स्त्रियाँ गुड़, लवण और घी से गुरु का पूजन करती हैं, तो वे सदा भाग्यसंयुत होती हैं।[16]

सुमंतु ने शुभा चतुर्थी को सुखावहा, सुसुखा, अत्यन्त सौभाग्यकरणी और रूपसौभाग्यप्रदा कहा है। उसका सुखाव्रत महापुण्य, रूप और भाग्यदायक, अतिसूक्ष्म, सुकर, धन्य, पुण्यसुखावह, परलोक में फलप्रद, अलौकिकरूपप्रदायक, सुखावह, हसित और ललित चेष्टाओं वाला कथित है। विसालयुक्त भुजाक्षेपादि को शुभ चेष्टा कहा गया है। उन्होंने कुरुशार्दल शतानीक को बतलाया कि उनके द्वारा सुखाव्रत के माध्यम से कृत्य द्वारा शिव–शिवा के सुत ईश विघ्नेश के पूजित किए जाने पर सभी को सुख प्रदान किया जाना चाहिए। जब शुक्लचतुर्थी पर भूमिसुत (मंगल) का वासर हो, तब वह सुखदासंज्ञकी चतुर्थी सुखों को करने वाली कही गयी है। प्राचीन काल में हिमालय पर्वत पर मैथुन मे संलिप्त भीम–उमा का पृथ्वी पर च्युत रक्तबिंदु धरा द्वारा प्रयत्नसहित सुखपूर्वक धारण किया गया। इस पृथ्वी से रक्तसमुद्भव रक्तवर्णीय कुज की उत्पत्ति हुई थी। पृथ्वी के अंग से उत्पन्न होने के कारण वह अंगारकसंज्ञक बना। मनुष्य के अंगों का प्रदाता, रक्षक एवं सौभाग्यादिकारक होने के कारण उसकी संज्ञा अंगारक है। जो नर एवं नारी भक्ति तथा श्रद्धासहित चतुर्थी की रात्रि से अनन्यमनसा उपवास कर के भक्तिसहित रक्तपुष्प तथा विलेपनों से कुज की पूजा करता है और श्रद्धान्वित होकर भक्तिपूर्वक सर्वप्रथम गणेश की अर्चना करता है, उस से सन्तुष्ट वह (गणेश) सौभाग्य और रूपसम्पदा प्रदान करते हैं। मन में पहले संकल्प कर यथाविधि स्नान करके मृत्तिका लाकर तथा वेद मन्त्र से वंदना करनी चाहिए[17] –

इह त्वं वंदिता पूर्वं कृष्णेनोद्धरता किल।।
तस्मान्मे दह पाप्मानं यन्मया पूर्वसंचितम्।।[18]

इस मंत्र को पढ़ कर सूर्य को दिखाना चाहिए। सूर्य की किरणों से पवित्र गंगाजलकण से भीगी मिट्टी को सिर पर रखकर सभी अंगों में लगाना चाहिए। तत्पश्चात् स्नान करके जल को मन्त्रित करने का विधान है।[19]

त्वमापो योनिः सर्वेषां दैत्यदानवद्यौकसाम्।।
स्वेदांडजोद्भिदां चैव रसानां पतये नमः।।
स्नातोऽहं सर्वतीर्थेषु सर्वप्रस्रवणेषु च।।
तडागेषु च सर्वेषु मानसादिसरःसु च।।
नदीषु देवखातेषु सुतीर्थेषु ह्रदेषु वै।।

इस मंत्र का ध्यान एवं पठन करते हुए स्नान करना चाहिए।[20]

तत्पश्चात् स्नान करके पवित्र होकर घर जाकर मन्त्रवित् को मंत्रसहित दूर्वा, शमी, अश्वत्थ और गाय का स्पर्श करना चाहिए। पवित्र भूमि से समुद्धृत[21] दूर्वा को नमस्कार करके दूर्वा के लिए यह मंत्र पढ़ना चाहिए–

त्वं दूर्वेऽमृतनामासि सर्वदेवैस्तु वंदिता।।
वंदिता दह तत्सर्वं दुरितं यन्मया कृतम्।।[22]

सुमन्तु ने शतानीक को उन के द्वारा शमी के लिए कथित इस मन्त्र के बोधनार्थ कहा–

पवित्राणां पवित्रा त्वं काश्यपी प्रथिता श्रुतौ।।
शमी शमय मे पापं नूनं वेत्सि धराधरान्।।[23]

सुमन्तु ने नृप शतानीक को अश्वत्थालंभन के विषय में इस मंत्र को समझने के लिए कहा–

नेत्रस्पंदादिजं दुःखं दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तनम्।।
शक्तानां च समुद्योगमश्वत्थ त्वं क्षमस्व मे।।[24]

इस मन्त्र को पढ़ते हुए बुद्धिमान् को अश्वत्थ का स्पर्श करना चाहिए। तदनन्तर प्रदक्षिणा करके पृथ्वी देवी को गाय प्रदान की जानी चाहिए। हाथ से समालंभन (स्पर्श) करने के अनन्तर इस मन्त्र को पढ़ना चाहिए[25] –

सर्वदेवमयी देवि मुनिभिस्तु सुपूजिता।।
तस्मात्स्पृशामि वंदे त्वां वंदिता पापहा भव।।[26]

इस मन्त्र को पढ़कर नित्य भक्ति एवं श्रद्धासमन्वित होकर अर्जुन–प्रदक्षिणा करनी चाहिए। जिससे उसके द्वारा निःसन्दिग्धरूपेण पृथ्वी की प्रदक्षिणा हो जाती है। एवंविध मौन धारण किए हुए अग्निशाला में जाना चाहिए। मिट्टी से पावों के प्रक्षालनानन्तर ही अग्निगृह में प्रविष्ट होना चाहिए। तत्पश्चात् इन श्रेष्ठ मन्त्र–पदों से हवन का सम्पादन किया जाना चाहिए[27]

शर्वाय शर्वपुत्राय क्षोण्युत्संगभवाय च।।
कुजाय ललितांगाय लोहितांगाय वै तथा।।[28]

ओंकारपूर्वक स्वाहासमन्वित एक सौ आठ, 54 या 27 मंत्रपदों द्वारा भक्तिपूर्वक यथाशक्ति खादिर, सुसमिधा, आज्य, दुग्ध, यव, तिल तथा अन्य बहुविध भक्षणीय पदार्थों द्वारा आहुतियों से हवन करने के पश्चात् यथाशक्ति सुवर्ण, चांदी अथवा काष्ठ अथवा देवदारु अथवा श्री खण्डचन्दन से निर्मित देव को भूमि पर संस्थापित किया जाना चाहिए। ताम्र अथवा चांदी के पात्र में घृत, कुंकुम और केसर अथवा अन्य लोहित पुष्प, पत्र एवं रक्तवर्णीय विविध फलों द्वारा निजसामर्थ्यानुसार अर्चना की जानी चाहिए। धनवान् भक्तिपूर्वक जितना धन विसर्जित करता है, उतना ही दाता का पुण्य शतसहस्त्रिक गुणा वृद्धि को प्राप्त होता है। ताम्र, बांस अथवा मिट्टी के पात्र में कुंकुम, केसरादि से मनुष्य यथाशक्ति पूजन करते हैं। उस पुरुषाकार बनाए गए पात्र की मन्त्रों द्वारा अर्चना की जानी चाहिए। अग्निर्मूर्धा–इस मन्त्र से गंध, पुष्पादि एवं धूपों से अर्चनानन्तर विधिवत् इसे ब्राह्मण को प्रदान किया जाना चाहिए। तत्पश्चात् द्ररिद्र तथा वित्तवान् मनुष्य द्वारा निज सामर्थ्य को देखकर गुड़ौदन, घृत, क्षीर, गोधूम और शालितण्डुल प्रदान किये जाने चाहिए। धन के विद्यमान होने पर वित्तशाठ्य नहीं करना चाहिए क्योंकि वैसा करने वाला उस लोक में फल प्राप्त नहीं करता है।[29]

शतानीक ने प्रश्न किया कि अंगारकयुक्ता चतुर्थी को रात्रि के समय भोजन करने वालों के द्वारा कितनी संख्या में अथवा एक (सकृत्) बार उपवास करना चाहिए। सुमन्तु ने कहा कि वह प्रसिद्ध चतुर्थी जो अंगारकसंयुक्त चतुर्थी होती है उसमें व्रत करके विधिवत् गुडादि दिया जाना चाहिए। रात्रि से चार कुजों से संयुत चतुर्थियों में व्रत किये जाने चाहिए। उन्होंने प्रत्येक चतुर्थी पर किए जाने वाले विधान के विषय में सुनने के लिए कहा। (प्रथमा चतुर्थी को) विनायक के साथ–सौवर्ण कुज बना कर आदर तथा भक्तिपूर्वक दष

सुवर्ण अथवा रजत अथवा ताम्र पात्रों में अरोपित करके दश अथवा दशार्ध अथवा उसके भी अर्ध सौवर्णिक, (द्वितीया को) बीस पलपात्र अथवा दस पलपात्र अथवा (तृतीया चतुर्थी को) बीस, दस अथवा पाँच कर्ष (चतुर्थी को) रौप्यसंख्यक पल अथवा पलार्ध अथवा उसका भी अर्धभाग बनाया जाना चाहिए। यथाशक्ति भक्तिपूर्वक एवं धनसहित रक्त वसनों से संपरिवेष्टित और लाल प्रसूनों से समन्वित ग्रहेश को साधकों द्वारा ताम्रमय पात्र में प्रतिष्ठित करवा कर, गुणी, श्रेष्ठ वाचक ब्राह्मण को दक्षिणासहित प्रदान किया जाना चाहिए। सुमन्तु ने कहा कि उनके द्वारा तिथियों में श्रेष्ठ और पुण्य तिथि का व्याख्यान किया गया था जिसमें उपवास करके मनुष्य अलौकिक सौन्दर्य की प्राप्ति करता है। तेज से सूर्य के समान, कान्ति से आत्रेय सम, प्रभा से रविसदृश, और बल से वायुतुल्य एवंविध रूप को प्राप्त कर विघ्ननाथ गणपति की कृपा से भौमसद की ओर प्रस्थान करता है। इस चतुर्थी व्रत के पठन–श्रवण करने वाले मनुष्यों के विशेषरूपेण ब्रह्महननादि पाप निःसन्देह विनष्ट हो जाते हैं और उन्हें निःसन्दिग्धरूपेण ऋद्धि, वृद्धि और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।[30]

प्रस्तुत पुराण के चतुर्थी–कल्प–वर्णनसंज्ञकाध्याय में सुमन्तु ऋषि ने राजा शतानीक से कहा कि चतुर्थी तिथि के दिन सर्वदा निराहार व्रती को विप्र को तिलान्न दे कर स्वयं भी तिलौदन का भक्षण करना चाहिए। एवंविधिना वर्षद्वय में व्रत की समाप्ति होने पर संतुष्ट भगवान् गणपति उसे अभीप्सित फल प्रदान करते हैं। चतुर्थीव्रतधारी मनुष्य भाग्य के निवास को प्राप्त होता है और धन–ऐश्वर्य के साथ क्रीडा करता है। इह लोक में आ (जन्म ग्रहण) कर पुण्य का अंत होने पर वह अलौकिक वपुधारी दिव्य कीर्तिधर्ता बन जाता है। बुद्धिमान्, धैर्यवान्, वाग्मी, भाग्यवान् और कामकारवान् व्रती असाध्य तथा महान् कार्यों को क्षणभर में सिद्ध कर लेता है। चतुर्थी व्रत का सम्पादनकर्त्ता गज, अश्व और रथों से सम्पन्न तथा दारा एवं सुत से सहायवान् होता है। वह नर नृप बनता है, न केवल इसी जन्म में अपितु सप्तजन्मपर्यन्त दीर्घायु होता है और पृथ्वी पालक ही बनता है। समस्तविघ्नविनाशक विनायक उससे सन्तुष्ट होकर यह सब कुछ उसे प्रदान करते हैं।[31]

वाराह–पुराण

वाराहपुराण में महात्मा गणनायक देवों द्वारा संस्तुत हुए तथा रुद्र द्वारा अभिषेक किए जाने के अनन्तर वह उमासहित शंकर की अपत्यता को प्राप्त करने में सक्षम हुए।[32] गणनायक से सम्बन्धित यह सभी क्रियाएं चतुर्थी तिथि में ही परिपूर्ण हुई। उसी समय से यह चतुर्थी तिथि अन्य तिथियों की अपेक्षा सर्वाधिक महत्त्वमयी हो गई। इस पुराण में आगे यह वर्णन प्राप्त होता है कि यदि कोई मनुष्य विनायक की कृपादृष्टि को प्राप्त करने का इच्छुक हो तो उसे उस चतुर्थी तिथि को तिलों का भक्षण करके भक्ति–भाव से गणेशार्चना करनी चाहिए, उस पर गणपति निःसन्देह ही अतिशीघ्र निज कृपा बरसाते हैं। इसका पाठ अथवा श्रवण करने से प्रार्थी का पथ विघ्नरहित होकर वह निष्पापी बन जाता है।[33]

गरुड़पुराण

गरूडपुराणानुसार अन्य देवी–देवताओं की पूजा के सदृश गणेश–पूजा भी उपचारों सहित होती है। गणेश्वर–पूजन में भी व्रत, होम, मन्त्र तथा जपेत्यादि की महत्ता होती है। माघ के शुक्लपक्षीय चतुर्थी के दिन निराहार रह कर कृत व्रत विशेष महत्त्वपूर्ण होता है। इसमें विप्र को तिल देकर स्वयमपि तिलोदक का भक्षण करना चाहिए। वर्षद्वयावधियुक्त यह व्रत निर्विघ्नतापूर्वक समाप्त होना चाहिए।[34] इसका प्रणव–सहित मूलमन्त्र यह है–

गः स्वाहा मूलमन्त्रोऽयं प्रणवेन समन्वितः।
ग्लौं ग्लां हृदये गां गीं गूं हूँ ह्रीं ह्रीं शिरः शिखा।
गूं वर्म गों च गौं नेत्रं गों च आवाहनादिषु।
आगच्छोल्काय गंधोल्कः पुष्पोल्कधूपकोल्ककः।
दीपोल्काय महोल्काय बलि०चाथ विसर्जनम्।
सिद्धोल्काय च गायत्री न्यासोऽगुष्ठादिरीतः।।[35]

अर्थात् प्रणवसहित गः स्वाहा–मूल मन्त्र है। ग्लौ ग्लां– को हृदय प्रदेश में तथा गां गूं को शिर में न्यस्त करना चाहिए। हूँ, ह्रीं, ह्रीं का शिखा में न्यास करना चाहिए। गूं वर्म है, गों और गौं चक्षु हैं तथा गों आवाहनेत्यादि में है। उल्क, गन्धोल्क, पुष्पोल्क, धूपकोल्क का आगमन–हेतु तथा दीपोल्क एवं महोल्क का क्रमशः बलि तथा विसर्जन के निमित्त और सिद्धोल्क–हेतु गायत्री एवं अंगुष्ठाादि ईरित न्यास करना चाहिए। तद्हेतु यह मन्त्र है–

ऊँ महाकर्णाय विद्महे वक्रतुण्डाय
धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात्।।[36]

गणों की तिल होम से अर्चना की जानी चाहिए जिसके लिए अग्रलिखित मन्त्र है–

गणाय गणपतये स्वाहा कूष्माण्डकाय च।
अमोघोल्कायैकदन्ताय त्रिपुरान्तकरूपिणे।।
ऊँ श्यामदन्तविकरालास्याहवेशाय वै नमः।
पद्मद्रंष्टाय स्वाहान्तर्मुद्रा वै नर्तनं गणे।।
हस्ततालश्च हसनं सौभाग्यादिफलं भवेत्।।[37]

इन मंत्रों द्वारा अन्तः मुद्रा करके गण में नर्तन तथा करतल ध्वनि करके हास्य करने पर सौभाग्य आदि का फल प्राप्त होता है। प्रस्तुत पुराण में मार्गशीर्ष की शुक्लपक्षीया चतुर्थी में कृत एकवर्षपर्यन्त पूजन विद्या, लक्ष्मी, यश, आयु और सन्तति आदि सम्पूर्ण कामनाओं का पूरक कथित है अथवा सोमवासरीया चतुर्थी को सम्यग्रूपेण व्रत करके गणेशोपासना, जप तथा होम करने से मनुष्य निर्विघ्न होकर स्वर्ग गमन करता है। शुक्ल चतुर्थी को गणेश–पूजन खाण्ड के लड्डुओं तथा मोदकों से करने पर समस्त कामनाओं की पूर्ति होती है। इसी भांति मदन–संज्ञकी चतुर्थी के दिन मदनकों से पूजा करने पर भी पुत्रेत्यादि प्राप्त होते हैं। किसी भी मास की चतुर्थी तिथि के दिन गणपति का स्मरण, हवन तथा पूजा–वंदना– ऊँ गणपतये नमः – मन्त्रपूर्वक सर्वविघ्नविनाशार्थ तथा सभी अभिलाषाओं की पूर्त्यर्थ की जाती है। एवंविध विनायक प्रतिमा की आद्य समाराधना उनके द्वादश नामों के कीर्तन सहित करने पर मानव सद्गति, स्वर्ग तथा मोक्ष– लाभ करता है। गरुड़पुराण में उल्लिखित द्वादश नाम उनकी महत्ता तथा उनके स्वरूप के परिचायक हैं, यथा– गणपूज्य, एकदन्ती, वक्रतुण्ड, त्र्यम्बक, नीलग्रीव, लम्बोदर, विकट, विघ्नराज, धूम्रवर्ण, बालचन्द्र, विनायक गणपति और हस्तिमुख। इन द्वादश गणों का पृथक्–पृथक् अथवा सबका एक साथ पूजन करने वाले मेधावी की सकल कामनाएं पूर्ण हो जातीं हैं।[38]

निश्कर्शः– व्रत हिन्दू धर्म में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हैं और विभिन्न धार्मिक और आध्यात्मिक उद्देश्यों के लिये रखे जाते हैं। व्रतों का महत्त्व निम्न बिन्दुओं से समझा जा सकता है। व्रत रखने से व्यक्ति के मन, वचन और कर्म की शुद्धि होती है। यह आत्म–नियन्त्रण और संयम का अभ्यास करने का एक तरीका है। जिससे मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति में वृद्धि होती है। व्रत रखने से व्यक्ति के बुरे कर्मों का नाश होता है और अच्छे कर्मों का संचय होता है। इससे अगले जन्म में अच्छे फल प्राप्त होते हैं और पुनर्जन्म के चक्र से मुक्ति मिलती है। विनायक चतुर्थी व्रत से बुद्धि, विवेक और समृद्धि की प्राप्ति होती है। इसे करने से जीवन में सभी प्रकार के विघ्न दूर होते हैं। गणेश चतुर्थी का व्रत रखने से सभी इच्छाओं की पूर्ति होती है। यह व्रत विशेश रूप से बुद्धि, समृद्धि और सौभाग्य प्राप्ति के लिए किया जाता है। व्रत से जीवन में समृद्धि, शांति और सौभाग्य की प्राप्ति होती है। इसे करने से सभी प्रकार के विघ्न और बाधाएँ दूर होती हैं। गणेश व्रत पुराणों में विघ्नों को दूर करने

और शुभदा प्राप्त करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन माना गया है। इन व्रतों का पालन करने से व्यक्ति को भगवान गणेश की कृपा प्राप्त होती है, जिससे सभी प्रकार के विघ्न दूर होते हैं और जीवन में सफलता और समृद्धि प्राप्त होती है।

सन्दर्भ

1. शि.म.पु. (रु.सं.), 4/18/25–36.
2. वही,, 4/18/37–48.
3. वही,. (रु.सं.), 4/18/49–68.
4. ना.म.पु. (पू.भा.), 113/1–17 (पूर्वार्ध).
5. वही, 113/17 (उत्तरार्ध)–27 (पूर्वार्ध).
6. वही,(पू.भा.), 113/27 (उत्तरार्ध)–38
7. वही, 113/39.
8. वही, 113/40 (उत्तरार्ध)–50.
9. वही,(पू.भा.), 113/55–71.
10. वही,(पू.भा.), 113/72–79.
11. वही, 113/80–89.
12. वही, 113/90–91.
13. अग्नि पु., 179/1–2.
14. वही, 179/3–4.
15. वही, 179/5–6.
16. भ.म.पु., 31/1–10.
17. वही, 31/11–23.
18. वही, 31/24.
19. वही, 31/25–26.
20. वही,31/27–29.
21. वही, 31/30–31 (पूर्वार्ध).
22. वही, 31/31 (उत्तरार्ध)–32.
23. वही, 31/33.
24. वही, 31/34.
25. वही,31/35.
26. वही, 31/36.
27. वही, 31/37–38.
28. वही, 31/39.
29. वही,31/40–48.
30. वही, 31/49–60
31. वही, 2/39/1–5.
32. वाराह पु., 1/23/35.
33. वही, 1/23/36–38.
34. गरुड़ पु., 1/29/10.
35. वही,1/29/11–13 (पूर्वार्ध).
36. वही, 1/29/13 (उत्तरार्ध).
37. वही, 1/29/14–15.
38. वही,1/29/16–22.